

समावेशी कक्षाओं में अध्ययन

पेगी मोहन

जब कोई किसी समावेशी कक्षा में प्रवेश करता है तो वह एक चौंकाने वाले दृश्य से दो-चार होता है जिसमें समाज के हाशिए पर मौजूद तबके के बच्चे सकुचाए हुए, पाठ पर ध्यान लगाने का प्रयास करते हुए परन्तु अन्त में निराश होकर उबासी लेते, खिड़की के

बाहर झाँकते या फर्श पर नज़रें गड़ाए हुए नज़र आते हैं।

समावेश की इस असफलता के लिए शिक्षक को दोषी ठहराना आसान है, खासकर तब, जब कोई शिक्षकों द्वारा इस वर्ग के बच्चों के साथ किए जा रहे भेदभाव के बारे में बार-बार सुनता है। और यह निष्कर्ष निकालना भी आसान है कि केवल इतना भर किए जाने कि ज़रूरत है कि शिक्षकों को संवेदनशील बनाया जाए ताकि वे उन बच्चों के साथ बेहतर सलूक करें।

दिल्ली में जब सरकार ने प्राइवेट स्कूलों को निर्माण कार्य के लिए रियायती दरों पर ज़मीन खरीदने की अनुमति दी तो उसमें शर्त थी कि वे स्कूल की उपलब्ध सीटों में से 20 प्रतिशत सीटें आर्थिक रूप से कमज़ोर वर्ग के बच्चों के लिए आरक्षित रखेंगे। बहुत-से स्कूलों ने कुछ हद तक



सभी चित्र: प्रशान्त सोनी

इसका पालन किया, परन्तु 2007 में दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा इसे कानूनन बाध्यकारी बनाए जाने के बाद ही सही मायने में गरीब बच्चे इन अभिजात वर्ग की कक्षाओं में नज़र आए।

दिल्ली के एक ऐसे ही अँग्रेज़ी माध्यम स्कूल में शिक्षक के रूप में कार्य करते हुए मुझे आर्थिक रूप से कमज़ोर (ई.डब्ल्यू.एस.) वर्ग के चार बच्चे सौंपे गए जिनके लिए मुझे वाचन की सहायक कक्षाएँ वर्ष की शुरुआत में लेनी थीं। 2007 में भर्ती हुए ये बच्चे अब कक्षा दो में थे। इन सहायक कक्षाओं के अलावा मैंने उन्हें सप्ताह में दो बार अँग्रेज़ी और पाश्चात्य संगीत की शिक्षा भी दी।

जटिल समस्या

ज़ल्द ही यह स्पष्ट हो गया कि समस्या केवल पढ़ने की नहीं है। गाने के सस्वर पाठ में जिन बातों से कक्षा के अन्य बच्चों को प्रोत्साहन मिलता था, वे ही इन ई.डब्ल्यू.एस. के बच्चों के लिए बेअसर साबित होतीं और वे यूँ ही खामोश बैठे रहते। शुरुआत में मैंने इसे भाषा से जुड़ी समस्या समझा - बच्चे शब्दों के मायने समझ नहीं पाते इसलिए पंक्ति की शुरुआत पढ़ने से उन्हें मदद नहीं मिलती थी। यद्यपि, जब सबके लिए समान परिस्थिति कर दी गई, गाने ऐसी भाषा के होते जो कक्षा के सभी बच्चों के लिए अनजानी होती तब वे गाने आत्मविश्वास और

उत्साह के साथ गाते; हमने इस प्रकार की चीज़ पहले भी देखी थी। स्कूल में काफी संख्या में कोरिया के बच्चे हैं जो शुरुआती कुछ महीने खामोशी के साथ ध्यानपूर्वक स्कूल में बिताते हैं सिर्फ इसलिए कि एक दिन बिना किसी की मदद के वे खुद अपने आप अँग्रेज़ी बोल सकें।

समय बीतने के साथ मैंने देखा कि हमारे ई.डब्ल्यू.एस. वर्ग के छात्र और अधिक चुप और निराश रहने लगे। समस्या मेरे सोचे हुए से अधिक जटिल थी।

जनशिक्षा का आरम्भ बिन्दु

जनशिक्षा के तार उस सामाजिक बदलाव से जुड़े हैं जिसके चलते औद्योगिक समाज अस्तित्व में आया: माँ-बाप ज़मीन से जुड़े नहीं रहे, काम की खातिर वे घर छोड़ने को विवश हुए। अब दिनभर बच्चे कहाँ रहेंगे, ऐसे में बच्चों को स्कूल भोजन के लिए अभिभावकों को मनाने की आवश्यकता नहीं रही। इन स्कूलों ने भी फैक्ट्री युग की विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान को अपनाने में अपनी भूमिका निभाई: बच्चों को उम्र के आधार पर समूहों में बाँट दिया, समय सारणियाँ बनाई गईं जिनमें काम के पश्चात् पूर्व नियोजित भोजनावकाश रखे गए, पाठ्यक्रम को छोटे-छोटे हिस्सों में बाँटा गया ताकि वे एक बड़ी समय सारणी के छोटे-छोटे खण्डों के अनुकूल बन सकें और एक वरीयता-आधारित

संगठित ढाँचा (हाइरार्की) बनाया गया जिसमें अधिकांशतः सूचना का प्रेषण एकतरफा ही होता, शिक्षक से उदासीन कक्षा की ओर।

जो माँ-बाप औद्योगिक समाज का हिस्सा नहीं बने उन्होंने बच्चों को स्कूल भेजने का निर्णय तत्काल नहीं लिया क्योंकि दिन में बच्चों को रखने के लिए उन्हें स्कूलों की आवश्यकता नहीं थी। उनकी रोज़ी उन्हें घर से दूर नहीं ले गई थी और वास्तव में उनके बच्चे भी सामान्यतः उनके ही कामों में लगे हुए थे।

जब समाज के हाशिए पर रहने वाले



शैक्षणिक संदर्भ अंक-20 (मूल अंक 77)

समुदाय अपने बच्चों को स्कूल भेजते हैं तो इस आशा के साथ कि उनके बच्चे भी सुविधाओं से भरी उस दुनिया का हिस्सा बनेंगे जिससे उन स्कूलों का सम्बन्ध है। वे जानते हैं कि अपने बच्चों को वे उस अनजानी दुनिया में आगे बढ़ा रहे हैं जहाँ बहुधा उन्हें खुद के बलबूते ही जीना होगा। माता-पिता स्कूल के जोखिम का हिसाब लगा पाते हैं, जिसका प्रतिनिधित्व वे स्कूल करते हैं, दूर रहते हैं तो इसका मतलब होगा जीवन भर हाशिए पर पड़े रहना। उनके दिमाग में, जो भाषा बच्चे समझते हैं उसमें पढ़ाई और घर की दुनिया से जुड़े रहने की चाह या भाव, जैसे मुझे नहीं होते।

दुनिया भर में हाशिए से मध्यमवर्ग में परिवर्तन की लगभग एक-सी ही कहानी दोहराई गई है: बच्चों की एक पीढ़ी, माह-दर-माह बिना समझे कक्षाओं में बैठने का दंश झेलती है, उस क्षण की प्रतीक्षा में जब सब कुछ समझ में आने लगेगा, जब वे दुनिया को एक नई नज़र से देख सकेंगे।

थोड़ा अलग शब्दों में कहें तो माता-पिता द्वारा अपने बच्चों को इन सम्भ्रान्त स्कूलों में भेजना महज़ सामाजिक बदलाव की चाहत में किए गए एक प्रयोग से ज़्यादा कुछ भी नहीं जिसमें वे अपने बच्चों को एक सुन्दर, चमकदार नई दुनिया की एक तरफा सैर पर भेजते हैं। यह हमेशा तनाव और उलझन भरा होता है क्योंकि इसमें बच्चों द्वारा अपनी पुरानी जीवन शैली

को त्यागकर, नए सिरे से खुद की खोज का तत्व शामिल होता है। कोरियाई बच्चों से अलग, जो प्रारम्भ से ही मध्यवर्ग से आते हैं, और जिनके माता-पिता आवश्यकता पड़ने पर पाठों को समझा सकते हैं, ई.डब्ल्यू.एस. वर्ग के बच्चे एक नई पहचान बनाने में लगे रहते हैं।

चुप्पी से समावेश तक

बच्चों को कक्षा में चुप्पी साधे, उम्मीद खोते देखना कष्टदाई होता है जब यह पता हो कि उनके दिमाग में बहुत कुछ चल रहा है, खामोशी से बढ़ रहा है और उस दिन का इन्तज़ार करना जब वह सारा इकठ्ठा हो और खामोशी टूटे। यह बहुत सारे समय की बर्बादी और समावेश का निरर्थक-सा मार्ग नज़र आता है।

प्रश्न फिर भी शेष है कि समावेश की शुरुआत के लिए आखिर कौन-सा पायदान सबसे बेहतर होगा। यहाँ विचार करने योग्य दो मुख्य बातें हैं, हाशिए पर स्थित बच्चे के लिए मनोवैज्ञानिक रूप से सर्वोत्तम क्या है, और कौन-सी चीज़ कक्षा के दूसरे बच्चों की नज़र में इनके प्रति स्वीकार्यता का भाव पैदा करेगी। हाशिए पर रहने वाले बच्चे अपनी नई पहचान शिक्षक से उतनी नहीं पाते जितनी अपनी कक्षा के साथियों से पाते हैं।

कुछ शिक्षकों के अनुसार ई.डब्ल्यू.एस. वर्ग के बच्चों को जितनी जल्दी स्कूल

या कक्षा में शामिल किया जाए उतनी ही जल्दी दूसरों द्वारा उनकी स्वीकार्यता की बेहतर सम्भावनाएँ होती हैं।

परन्तु समस्या यह है कि अभी भी हम नहीं जानते कि आखिर कौन-सा रास्ता अख्तियार किया जाए। हमारे अनुभव इन ई.डब्ल्यू.एस. वर्ग के बच्चों के साथ उत्साहवर्धक नहीं रहे हैं। हम पक्के तौर पर नहीं कह सकते कि कितना बेहतर वे सीख पा रहे हैं, या यह मात्र एक ऐसी समस्या है जो समय के साथ ढेर सारी मनोव्यथाओं को सहकर खुद-ब-खुद ही दूर हो जाएगी। हम अभी भी अँधेरे में हैं और सुरंग के मुहाने पर अभी भी कोई रोशनी नज़र नहीं आती। कक्षा दो में ई.डब्ल्यू.एस. वर्ग का बच्चा साफतौर पर संघर्ष करता हुआ नज़र आता है और हमें पता ही नहीं कि आखिर दखल किस प्रकार का हो जिससे इस बदलाव को आसान बनाया जा सके, क्योंकि बच्चा कोरियाई बच्चों के समान देखी-भाली चीज़ों और बातों के लिए मात्र नए शब्द नहीं सीख रहा वरन एक पूरी नई दुनिया से जूझ रहा है।

तीन दृश्य

इस वक्त तीन रास्ते नज़र आते हैं जिनके ज़रिए समावेश की क्रिया प्रभावी ढंग से की जा सकती है।

पहला तरीका तो यह हो सकता है कि ई.डब्ल्यू.एस. वर्ग के बच्चे को उस अनजान वातावरण में इतनी जल्दी

यानी प्राथमिक शाला स्तर पर न भेजा जाए, क्योंकि जल्दी स्कूल भेजना तभी सबसे अधिक उपयोगी हो सकता है जब उसका सम्बन्ध उस दुनिया से हो जिसे बच्चा जानता है। समेकित पाठ्यक्रम पर किए गए सभी शोध बतलाते हैं कि सीखने की शुरुआत बच्चे के पास जो बुनियाद उपलब्ध है, उसी पर आधारित होनी चाहिए।

इतनी छोटी उम्र के बच्चे इस काबिल नहीं होते कि अपनी बुद्धि के दम पर भाषा और संस्कृति से जुड़ी समस्याओं को समझ सकें। स्थानीय भाषा वाले स्कूल में यदि बच्चा अंग्रेज़ी का थोड़ा ज्ञान, अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा और थोड़ा विश्वास प्राप्त करने के बाद अंग्रेज़ी माध्यम वाली कक्षा में प्रवेश ले तो बेहतर प्रदर्शन कर सकता है। कुछ समय तक शिक्षा स्थगित रखने से वास्तव में समय की बचत होती है। थोड़ी देर से प्रारम्भ करने पर, जब बच्चा तेज़ी से सीखने लायक बन जाता है, तब बच्चे को उस अनजान कक्षा में शामिल करना अधिक कारगर तरीका हो सकता है।

भारत उन चन्द देशों में से है जहाँ प्राथमिक और माध्यमिक स्कूल अलग-अलग न होकर एक ही संस्था के हिस्से होते हैं। इसके कारण यह धारणा बनी है कि स्कूल में भर्ती होने कामतलब उन्हें एक राष्ट्रीय स्तर की परीक्षा से गुज़रना होता है। यह लगभग हमारी 10 वीं की परीक्षा जैसा ही होता है।

कक्षा-6 में ई.डब्ल्यू.एस. वर्ग के बच्चों को लेना कारगर हो सकता है क्योंकि छात्र उनके स्कूल के प्राथमिक और उच्चतर माध्यमिक वर्गों को सीखने की अलग-अलग इकाइयों और संस्कृति के रूप को समझते हैं। एक स्तरीय परीक्षा पास करके प्रवेश लेने वाले ई.डब्ल्यू.एस. वर्ग के छात्र भी विश्वास से भरे होंगे और स्कूल के प्रति लगाव रखेंगे। और यदि वे पर्याप्त संख्या में हुए, यानी सही मायने में 20 प्रतिशत कोटा भर पाए तो यह उनकी महत्वपूर्ण उपस्थिति होगी और वे 'दया के पात्र' जैसे कलंक से मुक्त रहेंगे।

त्रिनिदाद और टोबेगो में सरकार ने इन मुद्दों पर सफलतापूर्वक हस्तक्षेप किया।

केवल एक प्रश्न जो शेष रहता है कि इतने लम्बे समय तक इन्तज़ार और जिसका डर ई.डब्ल्यू.एस. वर्ग के माता-पिता व्यक्त करते हैं जिसके परिमाणस्वरूप बच्चे हमेशा के लिए आरामदेह हिन्दी माध्यम जीवन शैली में अटक के रह जाएँगे, पाठ तो वे समझ लेंगे पर अधिकारों से भरी अंग्रेज़ी माध्यम की दुनिया में प्रवेश न पा सकेंगे।

दिल्ली के कुछ प्राइवेट स्कूलों ने अलग तरीका अपनाया है; यहाँ प्राइमरी शिक्षा हिन्दी माध्यम में होती है, फिर अगले चरण में माध्यमिक शाला के प्रथम दो वर्षों में अंग्रेज़ी को शिक्षा का माध्यम बनाया जाता है। इस तरीके

ने सही मायनों में समावेशी कक्षाएँ बनाई हैं: अँग्रेज़ी न बोलने वाले बच्चे प्राथमिक कक्षाओं में शाला कार्य में माता-पिता की मदद से बेहतर प्रदर्शन करते हैं। उसके बाद जब ये बच्चे माध्यमिक शाला स्तर पर पहुँचते हैं, तब तक कक्षा में सामाजिक एकीकरण हो चुका होता है, अँग्रेज़ी बोलने वाले बच्चों द्वारा अन्य बच्चों को दी जा रही मदद और परिवर्तन की धीमी रफ्तार के कारण अँग्रेज़ी माध्यम को अपनाना सरल हो जाता है। सभी तरीकों में यह सर्वाधिक मानवीय तरीका है।

वास्तव में, हमें अँग्रेज़ी की ओर रुख करना ही क्यों चाहिए? हाँ, यह सही है कि किसी समय एक शक्तिशाली लॉबी ने यह फैसला किया कि अँग्रेज़ी को माध्यम बनाए रखने से कालान्तर में इस भाषा की सुविधा प्राप्त बच्चों की पीढ़ियों को नौकरियों में अतिरिक्त लाभ मिलेगा, एक स्पष्ट अभिजात वर्ग बनेगा जो वंश के कारण नहीं बल्कि अँग्रेज़ी के ज्ञान के दम पर होगा।

चूँकि, अँग्रेज़ी जानने की आवश्यकता खत्म नहीं हुई, इसके समर्थन में एक और लॉबी ने अपनी आवाज़ उठा दी है: गरीब लॉबी। गरीबों ने जान लिया है कि अँग्रेज़ी अब जाने वाली नहीं है और उनके बच्चों के पास एक ही विकल्प शेष बच जाता है कि वे भी इस खेल

में शामिल हो जाएँ। शिक्षाविदों को छोड़कर हर कोई जानता है कि स्कूल जाने का उद्देश्य मुख्यतः समावेश है, उस समूह का हिस्सा बनना है जिसकी नियति में सफलता लिखी है। माँ-बाप जानते हैं कि कक्षा में सही किस्म के साथियों का महत्व, शिक्षक द्वारा क्या पढ़ाया जा रहा है से भी अधिक है। इसलिए हमें ऐसे पाठ्यक्रमों के बारे में सोचने की ज़रूरत है जिसमें कक्षा की पढ़ाई से ज़्यादा ज़ोर उस भाषा पर हो जो सुविधा-सम्पन्न वर्ग के साथी बोलते



हैं, गरीबों को आगे बढ़ाने पर नहीं।

श्रेष्ठ अँग्रेज़ी माध्यम स्कूलों ने इस तीसरे विकल्प को समझे बिना ही पहले से अपना लिया है। कक्षा दो से गरीब बच्चे उन कक्षाओं में पढ़ रहे हैं जो अनिवार्य रूप से अँग्रेज़ी माध्यम वाले हैं। वे खामोश बैठकर पहले उस भाषा को सीखने के लिए जूझते रहते हैं जो कक्षा और खेल के मैदान में उनके सिर के ऊपर से गुज़रती रहती है। इसके बाद नाटक की कक्षाओं में

और संगीत की कक्षा में गाने के बोल के ज़रिए उस भाषा में गाना सीखते हैं और उस दुनिया में इस्तेमाल होने वाली भाषा में स्वयं को अभिव्यक्त करने के गुर सीखते हैं। बाद में, विश्वास के साथ कक्षा में सम्मिलित हो जाने के पश्चात् बोलने की हिचकिचाहट तोड़कर प्रश्न पूछने और प्रश्नों के उत्तर भी देने लगते हैं। यदि आप में धैर्य है और लम्बे समय तक उन बच्चों के चेहरों पर छाया रहने वाला घबराहट का भाव आप सह सकते हों तो अन्त में आप सफलता की उम्मीद कर सकते हैं।



यह विडम्बना ही है कि 'हिन्दी दिवस' पर बैठकर मैं इस लेख को ठीक करने बैठी हूँ, आज मैंने पूरा दिन कक्षा दो के सभी वर्गों के बच्चों को अँग्रेज़ी पढ़ाने में बिताया। आज, यकायक मुझे सौंपे गए ई.डब्ल्यू.एस. वर्ग के चार बच्चों में से दो ने खामोशी तोड़कर उत्साह से भाग लेना शुरू किया। कक्षा में जब क्रिया के बारे में पढ़ाया जा रहा था तब वे बार-बार हाथ उठाते और मुझे क्रिया शब्द बोर्ड पर लिखने को कहते। कक्षा के शेष बच्चे आपस में फुसफुसा रहे थे

कि क्या मैं उनके बोले शब्दों को समझ भी पा रही हूँ। दोनों में से एक बेहतरी पर था और दूसरा जो हमेशा खामोश और निराश रहा करता था, वह उत्साह के साथ सक्रिय था। शेष दो भी साहस जुटा रहे थे और मुझे विश्वास है कि जल्दी ही वे भी इस धारा में शामिल होंगे।

बच्चे कोई भी भाषा आसानी से सीख लेते हैं, उन्हें मुख्यधारा में ढकेल देने भर की ज़रूरत है और उसके बाद कुछ करने की ज़रूरत नहीं, जैसी कोरी कल्पनाओं के आधार पर नीति

निर्धारण के बड़े खतरे हैं। यह वैसी ही असंवेदनशीलता है जैसी कि बच्चे चूँकि बोल नहीं पाते इसलिए यह मानना की उन्हें दर्द नहीं होता। समावेशी कक्षा की जटिल और सामाजिक गैर-बराबरी वाली कक्षाओं में पढ़ना आसान नहीं होता। समाज में हाशिए पर रहने वाले बच्चों की समस्या को समझने की हमें ज़रूरत है, इन बच्चों की सही मायनों में मदद कर सके, ऐसा मौलिक पाठ्यक्रम बनाने की ज़रूरत है, और इस प्रयोग को धैर्य के साथ एक अवसर दें।

पेगी मोहन: भाषाविद्। भाषा, शिक्षा और सामाजिक बदलाव आदि विषयों पर लिखती हैं। युनिवर्सिटी ऑफ वेस्टइंडीज़, त्रिनिदाद और युनिवर्सिटी ऑफ मिशिगन, अमेरिका से शिक्षा प्राप्त की। बच्चों पर आधारित फिल्म भी बनाई है और पेंटिंग भी करती हैं। वसन्त वैली स्कूल, दिल्ली में वेस्टर्न म्यूज़िक सिखाती हैं।

अंग्रेज़ी से अनुवाद: श्रीकान्त आपटे: स्वतंत्र लेखक हैं। नाटक लेखन एवं चित्रकारी में रुचि। भोपाल में निवास।

सभी चित्र: प्रशान्त सोनी: पेन्टर और इलस्ट्रेटर। विद्या भवन एज्युकेशन रिसोर्स सेंटर, उदयपुर में कार्यरत।

यह लेख, ई.पी.डब्ल्यू. पत्रिका के 13नवम्बर 2010 अंक से साभार।

